International Journal of Scientific Research in Humanities and Social Sciences
Available online at : https://ijsrhss.com
ISSN : 3048-8176 OPEN ACCESS doi : https://doi.org/10.32628/IJSRHSS

भारतीय संघवाद में केन्द्रीय कार्यपालिका का वर्चस्वः कारण और परिणाम

डॉ0 सपना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा।

ARTICLEINFO

Article History:

Accepted : 01 Jan 2026
Published : 28 Jan 2026

Publication Issue :
Volume 3, Issue 1
January-February-2026

Page Number :
16-20

ABSTRACT

शोध सारांश – भारतीय संघवाद संवैधानिक रूप से संघात्मक होने के बावजूद व्यवहार में केन्द्रीकृत स्वरूप प्रदर्शित करता है, जिसमें केन्द्रीय कार्यपालिका की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली रही है। केन्द्र–राज्य संबंधों में संघीय कार्यपालिका को प्राप्त अधिक अधिकार राष्ट्रीय नीति समन्वय में एक ओर जहाँ वृद्धि करते हैं वहीं दूसरी ओर राज्यों की स्वायत्तता एवं संघीय संतुलन पर प्रतिकूल प्रभावों को परिलक्षित करते है। इस शोध का उद्देश्य केन्द्रीय कार्यपालिका के वर्चस्व कें संवैधानिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक कारणों तथा उसके संघ–राज्य संबंधों पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना है।

बीज शब्द – संघवाद, वर्चस्व, नीति आयोग, संघसूची, अवशिष्ट शक्तियाँ, अंतर–सरकारी।

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक संघीय गणराज्य है जिसमें कार्यपालिका की शक्तियाँ केन्द्र (संघ) और राज्यों के बीच विभाजित है। भारतीय संघीय कार्यपालिका की संरचना संविधान के अनुच्छेद 52 से 78 तक वर्णित है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अन्तर्गत संघीय कार्यपालिका की शक्तियों का विस्तार से वर्णन है जिस पर संसद कानून बना सकती है।[1] संघीय कार्यपालिका भारत सरकार की नीतियों को लागू करने, प्रशासन चलाने और कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए जिम्मेदार है। यह नाममात्र और वास्तविक शक्तियों में विभाजित है, संवैधानिक व्यवस्था में राष्ट्रपति नाममात्र प्रमुख है जबकि प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् वास्तविक शक्ति का प्रयोग करते है। संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद्, महान्यायवादी, नियन्त्रक एवं महा लेखा परीक्षक समाहित है।

विश्व में जहां एक ओर कुछ संघो का निर्माण स्वतंत्र राज्यों के पारस्परिक समझौते के फलस्वरुप हुआ वहीं दूसरी ओर भारतीय संघ किसी समझौते का परिणाम नहीं है। इसमें शक्तिशाली केंद्र के साथ संघटक इकाईयों के रूप

Copyright © 2026 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

में राज्यों की स्थापना की गई है,जो अपने–अपने क्षेत्र में स्वायत्त होते हैं। इस स्वायत्तता का तात्पर्य यह नहीं है कि वे केंद्रीय सत्ता के विरुद्ध कार्य करें।

केंद्र और राज्य संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के मध्य रहकर अपना कार्य संपादित करते हैं। संघीय व्यवस्था में केंद्र तथा राज्य सरकारों को जो शक्तियां प्राप्त होती हैं, वह एक दूसरे की दया अथवा इच्छा पर निर्भर नहीं करती वरन् उन दोनों की शक्तियों का मूल स्रोत संविधान होता है।[2] दोनों के मध्य सामंजस्य पूर्ण संबंध सहकारी संघवाद को जन्म देते हैं। ग्रेनविल ऑस्टिन भारतीय परिसंघवाद को 'सहकारी परिसंघवाद' कहते हैं, जिसमें प्रबल केंद्रीय सरकार है फिर भी इसका यह परिणाम आवश्यक नहीं है कि प्रांतीय सरकारे कमजोर होकर केंद्रीय राजनीति की प्रशासनिक अभिकरण मात्र ही बन जाएं।[3]

संघीय सरकार को राज्यों की अपेक्षा अधिक विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। भारतीय संविधान के अंतर्गत विधायी संबंधों का उल्लेख अनुच्छेद 245 –255 तक किया गया है, अनुच्छेद 246 में तीन प्रकार की सूचियों के द्वारा केन्द्र–राज्य सरकारों के मध्य विधायी शक्तियों के विभाजन का उपबंध है। साथ ही साथ अवशिष्ट शक्तियाँ (अनुच्छेद 248) भी संघीय सरकार में निहित है। इसके अतिरिक्त अनु0 249 (राष्ट्रीय हित), अनु0 250 (आपात घोषणा के दौरान), अनु0 252 (राज्यों की सहमति से बनाई गई विधि), अनु0 253 (अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को प्रभावी करने हेतु विधान), अनु0 356 (राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा) में भी संघीय सरकार द्वारा बनाई गई विधि ही सर्वोपरि है।

भारतीय संविधान के अनु0 256–263 के द्वारा केन्द्र–राज्य के मध्य प्रशासनिक शक्तियों के वितरण की व्यवस्था की गई है।[4] अनु0 256 यह उपबंधित करता है कि राज्य सरकार संसद द्वारा पारित विधि को मान्यता देते हुए उनका अनुपालन सुनिश्चित करे। अनु0 257 यह उपबंधित करता है कि संघीय कार्यपालिका राज्य की कार्यपालिका को प्रशासनिक निर्देश दे सकती है जिन्हें वह आवश्यक समझती है। यदि इन निर्देशों का अनुपालन करने में सम्बन्धित राज्य विफल रहता है तो केन्द्र सरकार इसे आधार बनाकर राज्यपाल के माध्यम से सम्बन्धित राज्य पर राष्ट्रपति शासन (अनु0 356) अधिरोपित कर सकती है। यह भी केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

संविधान के भाग 12 तथा अनुच्छेद 264–291 केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय शक्तियों के वितरण को उपबंधित करते हैं।[5] इन शक्तियों में भी केन्द्रीय कार्यपालिका का पक्ष मजबूत है। राजस्व के संग्रहण एवं वितरण में भी संघीय सरकार का पर्याप्त नियंत्रण है। जनहित की समस्त योजनाओं के क्रियान्वयन में राज्य सरकारें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जिसके लिए धन की व्यवस्था करना भी महत्वपूर्ण होता है। केन्द्र द्वारा प्रत्येक पाँच वर्ष में वित्त आयोग की सिफारिश पर राज्यों को धन आवंटित किया जाता है किन्तु यह आवंटन सामान्यतः अपर्याप्त होता है। प्रायः राज्यों द्वारा ऐसे आरोप लगाये जाते हैं कि जिन राज्यों से केन्द्र अप्रसन्न होता है, उनके साथ वित्तीय आवंटन में पक्षपात किया जाता है।इस तरह संघीय शासन में केन्द्र को राज्यों के ऊपर अधिकारिता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त संघीय कार्यपालिका के संवैधानिक प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति को आपात उपबंधों के द्वारा अधिकार प्राप्त हैं जिनके प्रयोग से वह संविधान के संघात्मक स्वरूप को बदल सकता है किन्तु इसके लिए लोकसभा एवं राज्य सभा में बहुमत होना

चाहिए। 2014 के बाद बनी केन्द्रीय सरकार अपने स्पष्ट बहुमत के कारण अपनी नीतियों एवं चुनावी एजेण्डे को लागू करने में सफल रही है। संविधान के आपातकालीन उपबंध भी उसकी मजबूती को बढ़ाते हैं।

आपात उपबंध[6]

- अनुच्छेद–352 यह उपबंधित करता है कि राष्ट्रपति युद्ध, वाह्य आक्रमण और सशस्त्र विद्रोह से देश की सुरक्षा करने के लिए आपातकाल की उद्घोषणा कर सकता है।
- अनुच्छेद–356 के अधीन यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि किसी राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा तो वह आपात की घोषणा कर सकता है। इस उद्घोषणा के पश्चात् सम्बंधित राज्य की विधान सभा भंग हो जाती है और सम्पूर्ण प्रशासन केन्द्र सरकार के अधीन हो जाता है।
- अनुच्छेद–360 यह उपबंधित करता है कि जब भारत या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय संकट की स्थिति उत्पन्न होती है तो राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा की जा सकती है।

उपरोक्त उपबंधों के परिणामस्वरूप भारतीय संघात्मक स्वरूप में एकात्मकता के तत्वों का प्रबल प्रभाव दृष्टिगत होता है, जो तात्कालिक परिस्थितिजन्य था। भारतीय संघीय स्वरूप की इसी विशेषता के कारण विद्वान के.सी. व्हीयर के अनुसार भारतीय संविधान अर्द्धसंघात्मक है और इसका झुकाव एकात्मकता की ओर है।[7] स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त शक्तिशाली संघ देश की एकता, अखण्डता और विकास के लिए आवश्यक था जिसमें राज्यों की परस्पर सहभागिता अनिवार्य थी किन्तु अधिकांश समय संघीय सरकारों द्वारा राष्ट्रहित की अपेक्षा दलीय हितों के कारण विपक्षी दलों द्वारा शासित राज्यों पर अपनी शक्तियों को आरोपित करने की प्रवृत्ति पाई गई। संघीय सरकार को संविधान से प्राप्त अधिक शक्ति प्रारम्भ से लेकर अद्यतन केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के मध्य तनाव का कारण बनी हुई हैं। केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में सर्वाधिक कटुता या तनाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख बिन्दु निम्न हैं–[8]

- राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त और उसके प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहने वाले राज्यपालों की भूमिका को लेकर सर्वाधिक विवाद उत्पन्न होता है। ये केन्द्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करते हुए अनुच्छेद–356 को लागू करवाने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।
- अनुच्छेद–257 को आधार बनाकर राज्यों पर राष्ट्रपति शासन लागू करने की शक्ति भी विवाद का कारण है। इसका अब तक उत्तर प्रदेश, केरल, पंजाब और बिहार में अनेक बार प्रयोग किया जा चुका है। इसमें राज्यों द्वारा संशोधन या समाप्ति की मांग की जाती है।
- अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति राज्य में करने से लेकर बर्खास्तगी तक का अधिकार केन्द्रीय सरकार के पास होता है जिससे इन अधिकारियों की पूर्ण निष्ठा केन्द्र के प्रति होती है न कि राज्य के प्रति, इससे उनका मतभेद राज्य सेवा के अधिकारियों एवं राज्य सरकारों से बना रहता है।
- एक विवाद की स्थिति तब बनती है जब केन्द्र तथा राज्य में भिन्न दलों की सरकारें होती हैं और दोनों की नीतियाँ परस्पर मेल नहीं खाती। ऐसे में केन्द्र राष्ट्रीय सुरक्षा और सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा करने हेतु अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए राज्य में अर्द्ध सैनिक बलों की नियुक्ति करता है।

- केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कटुता आर्थिक नियोजन को लेकर भी है। यद्यपि नीति आयोग तनाव को कम करने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है किन्तु राज्य सरकारें अब भी उनके आर्थिक सहयोग एवं राजस्व बँटवारे को लेकर असंतुष्ट है।
- केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता के कारण भी राज्यों में तनाव पाया जाता है। अनेक अवसरों में देखा जाता है कि राज्यों के पास वित्तीय संसाधन कम होते हैं लेकिन उनके दायित्व में लगातार वृद्धि होती है। केन्द्र से वित्त की मांग किये जाने पर यदि राज्य में विरोधी दल की सरकार है तो केन्द्र सरकार वित्त का आवंटन उनकी माँग या आवश्यकतानुरूप नहीं करती है।
- वर्तमान समय में केन्द्र प्रायोजित योजनाओं (सीएसएस) में वृद्धि भी केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न करती है। ये योजनाएँ केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों से बिना विचार–विमर्श किये बनाई जाती है और उन्हें इनके क्रियान्वयन के लिए बाध्य किया जाता है। सभी राज्य अपनी विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के कारण उन योजनाओं को क्रियान्वित कर सकें, यह सम्भव नहीं होता है और यदि राज्य भलीभांति ऐसा कर भी दे ंतो उसका श्रेय उन्हें न मिलकर केन्द्र को मिलता है।
- संविधान के अनुच्छेद–3 में संसद को नए राज्यों के निर्माण, वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन की शक्ति सन्निहित है जो सिद्ध करती है कि राज्यों का अस्तित्व ही केन्द्र पर निर्भर करता है।[9] वर्तमान समय में यह भी केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के तनाव को बढ़ाने वाला बिन्दु है। इस शक्ति का प्रयोग करके ही 31 अक्टूबर 2019 को कश्मीर राज्य को जम्मू कश्मीर और लद्दाख, दो केन्द्रशासित प्रदेशों में विभाजित कर दिया गया।

निष्कर्षतः भारतीय संघवाद में केन्द्रीय कार्यपालिका को प्राप्त शक्तियों से यह आभास होता है कि संघीय ढांचा एकात्मकता की ओर झुकाव लिए हुए है। किन्तु संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक एकरूपता तथा राजनीतिक स्थिरता को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से केन्द्र को अपेक्षाकृत व्यापक शक्तियाँ प्रदान की। संघ सूची का विस्तृत दायरा, अवशिष्ट शक्तियों का केन्द्र में निहित होना तथा आपातकालीन प्रावधानों की उपलब्धता केन्द्रीय कार्यपालिका के वर्चस्व को संस्थागत आधार प्रदान करते हैं। यद्यपि नीति आयोग, जी0एस0टी0 परिषद् तथा अन्य अंतर–सरकारी संस्थायें सहयोगात्मक मंच के रूप में स्थापित की गई है किन्तु व्यावहारिक रूप से इनमें भी केन्द्रीय कार्यपालिका की निर्णायक भूमिका परिलक्षित होती है।

केन्द्रीय कार्यपालिका के इस वर्चस्व के परिणाम बहुआयामी है। एक ओर यह राष्ट्रीय नीति समन्वय, प्रशासनिक दक्षता तथा आपात स्थितियों में त्वरित निर्णय क्षमता को सुदृढ़ करता है, वहीं दूसरी ओर राज्यों की स्वायत्तता, संघीय संतुलन तथा विकेन्द्रीकरण की भावना को प्रभावित करता है। इससे संघ–राज्य संबंधों में तनाव एवं असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना बनी रहती है। अतः भारतीय संघवाद की प्रभावशीलता एवं दीर्घकालिक स्थिरता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय कार्यपालिका की शक्ति का प्रयोग सहकारी एवं सहभागी संघवाद के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाए, जिससे राष्ट्रीय हित एवं राज्य की स्वयत्तता के मध्य संतुलन स्थापित किया जा सके।

सन्दर्भ सूची –

1. कश्यप, सुभाष. (2020). हमारा संविधान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली. पृष्ठ संख्या– 148
2. सईद, एस0एम0. (1998). भारतीय राजनीतिक व्यवस्था. (4th Ed). सुलभ प्रकाशन, लखनऊ. पृष्ठ संख्या – 66
3. Austin, G. (1966). The Indian Constitution: Cornerstone of our Nation. Oxford University Press. London. P- 187
4. कश्यप, सुभाष. (2020). हमारा संविधान : भारत का संविधान एवं संवैधानिक विधि, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नई दिल्ली, पृ0सं0 230–231
5. पाण्डेय, डॉ0 जय नारायण. (1998). भारत का संविधान, (29वाँ संस्करण). सेन्ट्रल ला एजेंसी, प्रयागराज, पृ0सं0 487
6. बसु, डी0डी0. (2002). भारत का संविधान : एक परिचय, बाधवा प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ0सं0 189–190
7. ह्वीयर, के0सी0. (1963). फेडरल गवर्नमेंट. (चतुर्थ संस्करण). आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क. पृ0सं0 27
8. शर्मा, धर्मराज. (2016). भारतीय संघ व्यवस्था : केन्द्र–राज्य सम्बन्ध, रावत पब्लिकेशन जयपुर. पृ0सं0 162–163
9. बसु, डी0डी0. (2002). भारत का संविधान : एक परिचय, बाधवा प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ0सं0 70